कविता

शकुनि बाहर निकाला जाए

-योगेश कुमार

झूठ कहां तक पाला जाए
पतन कहाँ तक टाला जाए
हाथ जोड़कर विनती है बस
बाबा दाढ़ीवाला...जाए

वक़्त गुज़र ये काला जाए
अब जो होश संभाला जाए
हिंदू मुस्लिम खेल चुके बस
सोच के वोट अब डाला जाए

पासा पुनः उछाला जाए
शकुनि बाहर निकाला जाए
सारे मनके छिटक रहे हैं
जोड़ी फिर से माला जाए

खोला ज़हन का ताला जाए
साफ़ किया हर जाला जाए
संविधान तेरा पड़ा अंधेरे
उसकी तरफ़ उजाला जाए

विशेष/कहानियों में जीना-मरना

कहानी के पीछे पगलाए घूमना हर किसी के मिजाज में नहीं होता। न जाने कितनी बार मैंने अपने भाइयों के पैर दबाए, उनसे किसी फिल्म की कहानी सुनने के लिए। गर्मी की दुपहरियों में घंटों लुरखुर काका की गाय-भैंसों पर नजर रखी ताकि लोरिक-संवरू और दयाराम ग्वाल के पंवारे सुनाते हुए उनकी कल्पना और लयकारी में कोई खलल न पड़े। अकबर-बीरबल, शीत-बसंत और राजा भरथरी के किस्से चिथरू चाचा से सुनने के लिए जाड़ों की शाम सूरज झुकने के भी घंटा भर पहले मैं उनके दरवाजे पर हाजिरी लगा देता था।

उनके कई सारे काम तब अधबीच में होते थे और वहां मेरी असमय उपस्थिति से परेशान उनके घर वाले हिकारत से मुझे देखकर मुंह बिचका देते थे। फिर उपन्यास पढ़ने की उम्र हुई तो इसके लिए बड़ों की निर्लज्ज चापलूसी, यहां तक कि चोरी-चकारी जैसा कर्म भी मुझे कभी अटपटा नहीं लगा। कहानियों के पीछे इस दीवानगी की एक बड़ी वजह अपने परिवेश से अलगाव और मन पर छाए गहरे अकेलेपन से जुड़ी हो सकती है। लेकिन बाद में लगा कि यह कोई वैसी अनोखी बात नहीं है, जैसी शुरू में मुझे लगा करती थी।

किसी मुश्किल से मुश्किल बात को भी अगर कहानी की तरह सुनाया जा सके तो इससे दो नतीजे निकलते हैं। एक यह कि सुनाने वाला बात को अच्छी तरह समझ गया है। दूसरा यह कि जिसे सुनाई जा रही है, बात का काफी हिस्सा उसकी समझ में आ जाएगा। झूठ और गप्प से घिरे हुए इस समय में ज्यादातर लोग बातों को समझ लेने का ढोंग भर करते हैं। तकनीकी जुमलेबाजी से भरी बातें अक्सर बताई भी इसीलिए जाती हैं कि लोग उन्हें न समझें और ऊबकर या नासमझ मान लिए जाने के डर से मुंडी हिलाकर छुट्टी पा लें। और तो और, काफी सारे साहित्यिक कथ्य पर भी यह बात लागू होती है!

कुछ समय पहले एक थ्रिलर से गुजरते वक्त उसमें आए इस वाक्य पर नजर अटक गई- 'हम कहानियों के लिए जीते हैं, कहानियों के लिए ही मरते हैं।' क्या सचमुच? तनख्वाह में हर पांचवें साल एक नया जीरो जोड़ते हुए आगे बढ़ने वाले एक कामयाब परिचित से न जाने किस रौ में एक दिन अचानक मैंने पूछ लिया, 'तुम्हारे बच्चे कभी तुमसे तुम्हारी कहानी सुनना चाहेंगे तो उन्हें क्या सुनाओगे? यही कि क्या-क्या किया तो सैलरी कितनी बढ़ गई?'

यकीनन मेरे इस सवाल में अजनबियत भरी थी। कहानियां उसके पास थीं। बस, जिंदगी की चूहा-दौड़ में शामिल हो जाने के बाद उन्हें पलट कर याद करने का मौका उसको एक जमाने से नहीं मिला था। उस चढ़ती रात में हम देर तक बतियाते रहे। पढ़ाई पूरी करने के बाद तीन साल लंबी उसकी भटकन के किस्सों ने हमारे बीच के अंधेरे कोने को चमकते जुगनुओं से भरी हुई झाड़ी जैसा बना दिया। लगा कि एक लंबी कहानी के नगण्य पात्र ही हैं हम। बस सुनाए जाने की देर है।

-साइबर नजर

पैदल चलना हो सकता है जलवायु परिवर्तन का स्थाई समाधान

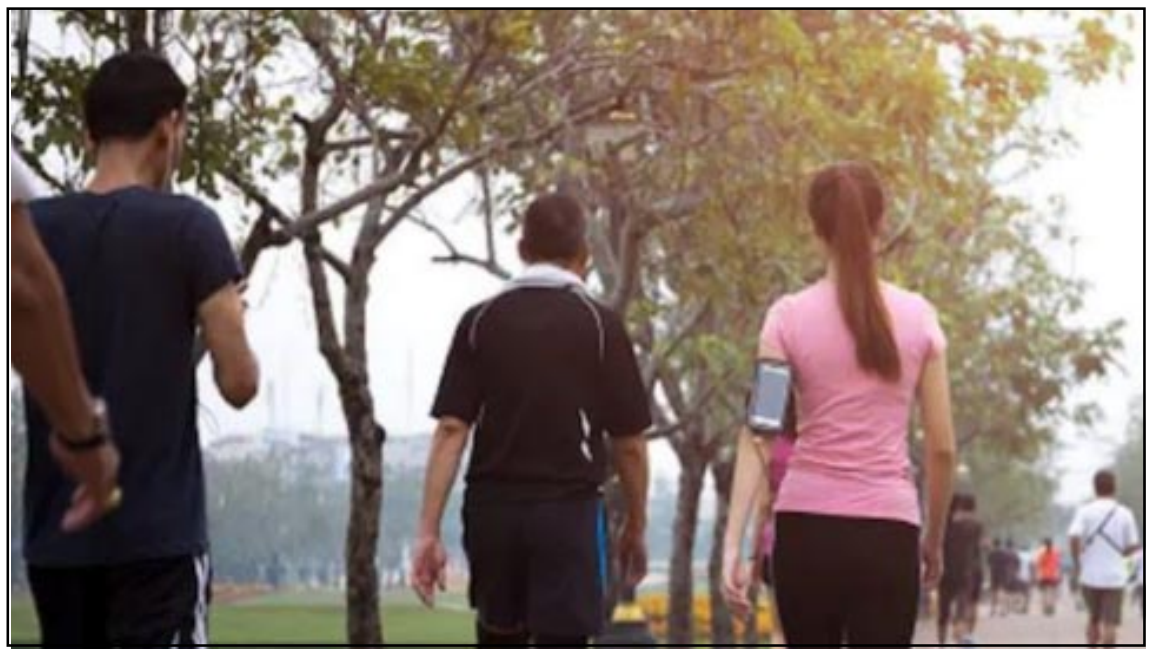

अमरनाथ झा

पैदल चलना जलवायु परिवर्तन की वैश्विक समस्या का स्थानीय समाधान हो सकता है। यह मनुष्य की आदिम गतिविधियों में से है। जीवाश्म ईंधनों पर आधारित यंत्रचालित वाहनों का प्रचलन बढ़ने के बाद भी पैदल चलने का कोई विकल्प नहीं है। परन्तु विकास की प्रचलित समझदारी में इसे समुचित सम्मान और सुविधा नहीं दी जा रही। सड़कों की संरचना से पैदल चलने वालों का स्थान समाप्त-सा हो गया है। भारत, खासकर बिहार की स्थिति अधिक खराब है।

आंकड़े बताते हैं कि किसी काम के लिए होने वाली यात्राओं में से एक तिहाई पैदल पूरी की जाती है। राष्ट्रीय सांख्यिकी संगठन(एनएसओ) के अनुसार आज भी 60 प्रतिशत बच्चे पैदल स्कूल जाते हैं। लेकिन सड़कों की हालत ऐसी है कि भारत में सड़क दुर्घटनाओं में मरने वाले लोगों में 17 प्रतिशत पैदल चलने वाले होते हैं। यह आंकड़ा सड़क परिवहन एवं राजमार्ग मंत्रालय द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट का है। चिंताजनक यह है कि 2014 में सड़क दुर्घटनाओं में मरने वालों की संख्या 2019 में 85 प्रतिशत बढ़ गई है। अर्थात हमारी सड़कें पैदल चलने वालों के लिए अधिक असुरक्षित होती जा रही हैं।

पूरी दुनिया में हो रहे जलवायु परिवर्तन का सबसे बड़ा कारण जीवाश्म ईंधनों का अत्यधिक उपयोग है। जीवाश्म ईंधनों का सर्वाधिक उपयोग वाहनों में होता है। जिन इलेक्ट्रिक इंजनों से चलने वाले वाहनों को विकल्प के तौर पर प्रचारित किया जा रहा है,उनको चलाने वाली बिजली तो जीवाश्म ईंधनों से ही बनती है। जिन अक्षय ऊर्जा स्रोतों को विकल्प के तौर आजमाया जा रहा है, उनमें कोई स्रोत जीवाश्म ईंधनों की जगह लेने की स्थिति में नहीं है। इसलिए ईंधन आधारित वाहनों के उपयोग में कटौती करने के सिवा कोई चारा नहीं है। छोटी दूरी की यात्राओं के लिए साइकिल और साइकिल रिक्सा को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

वर्तमान नगर व्यवस्था और सड़क संरचना में पैदल चलने वालों के लिए कोई स्थान नहीं है। जबकि उनके लिए साफ-सुथरा, उपयुक्त ऊंचाई व चौड़ाई वाले, बाधा रहित, गार्ड-रेलिंग से सुरक्षित व बुनियादी सुविधाओं से युक्त फुटपाथ बनाने का प्रावधान इंडियन रोड कांग्रेस की मार्गदर्शिका में किया गया है। यह मार्ग-दर्शिका कागजों में ही रह गयी है। प्रावधान तो सड़क पार करने के लिए समुचित अंतराल पर जेब्रा-क्रासिंग बनाने का भी है। पर इसकी सोच सड़क बनाने वालों में नहीं दिखती। बूढ़े, बच्चे, महिलाएं व दिव्यांग (विकलांग) इस कठिनाई को अधिक झेलते हैं।

इन्हीं समस्याओं का समाधान खोजने में सस्टनेबल अर्बन मोबिलिटी नेटवर्क का गठन हुआ है और वह 11 जनवरी को पैदल-यात्री दिवस मना रही है। उसके अभियान से प्रभावित होकर पुणे शहर में एक सड़क को पैदल चलने वालों के लिए आरक्षित कर दिया गया है। वहां 11 दिसंबर को पैदल-यात्री दिवस मनाया गया। इसके साथ ही देशभर में सड़कों पर पैदल चलने वालों के लिए सुरक्षित और सुविधाजनक व्यवस्था की मांग शुरू हो गई है। इसके लिए झटका डॉट ओआरजी नामक वेबसाइट बनाकर हस्ताक्षर अभियान चलाया जा रहा है। आज कई देशों के कई शहरों में लोग समूह में पैदल चले।

पैदल यात्री दिवस मनाने के माध्यम से समाज के सामने इसकी उपयोगिता और अपरिहार्यता को रेखांकित किया जा रहा है जिससे पैदल यात्री के साथ तिरस्कार के बजाए सहज सम्मान की भावना उत्पन्न हो। साथ ही जलवायु परिवर्तन की समस्या को देखते हुए अधिक प्रकृति सम्मत जीवनशैली को यथाशीघ्र अपनाने की आवश्यकता को रेखांकित किया जा सके। यह समय की आवश्यकता है।

अंधविश्वास / चिता पर स्त्री

एक किशोर वय का लड़का, अपनी भाभी को मां की तरह पूजता था...

एक बार किसी काम के लिए विलायत जाना पड़ा , वापस आकर पता चला बड़े भाई को असमय काल ने अपना ग्रास बना लिया...

ये तो ईश्वर की इच्छा रही, लेकिन अपनी भाभी माँ के कमरे मे जाकर देखा तो कोई नहीं... एक पत्र मिला उसके नाम, उसकी भाभी मां का लिखा...

मैं जीना चाहती हूं, लेकिन यहां तुम्हारे भईया को ले जा रहे हैं अग्नि में भस्म करने...मुझे सुनाई पड़ रही है साथ में मेरे दाह संस्कार की भी बातें...

ढोल नगाड़े वाले बुला लिए गए हैं, जो मेरे पति की चिता पर मुझे बांधने के बाद मेरी चीखों को अपने शोर से दबा देंगे..

तुम्हारे भईया की मृत्यु तो विधाता का किया धरा है, मेरी मौत के जिम्मेदार ये समाज और तुम्हारा परिवार है, विधाता से बढ़कर हैं ये लोग...

मुझे जिंदा जला देंगे, मुझे अग्नि से बहुत डर लगता है, भोजन बनाते समय भी कभी हाथ जल जाता तो कई रातें दर्द से सो नहीं पाती थी, कैसे सहूंगी मैं उन लपटों को, क्या मुझे स्त्री और विधवा होने का इतना बड़ा दंड मिलेगा? मैं तो नहीं बचूंगी, लेकिन हो सके तो बाकियों को बचा लेना....

भाभी मां को याद करके मोहन फूट फूट कर रोने लगा...

ठान लिया चाहे जो हो जाए, भाभी मां की मौत का बदला इस कुप्रथा की हत्या करके लूंगा...

18 वीं शताब्दी में जन्मे राजा राममोहन रॉय, आज 21वीं शताब्दी के लोगों से ज्यादा भावुक, संवेदनशील, बुद्धिमान, करुणावान थे, स्त्री का दर्द जानते थे, स्त्री की दुर्दशा के लिए अन्य लोगों की तरह स्त्री या उसके भाग्य को दोषी नहीं मानते थे। अंग्रेजों के साथ मिलकर अथक प्रयास से अपनी भाभी मां की मौत का बदला लिए। न केवल इस कुप्रथा को गैरकानूनी कराया बल्कि समाज की अन्य कुरीतियों विशेष कर, जाति भेदभाव, बाल विवाह, स्त्री शिक्षा जैसी कई सामाजिक मुद्दों पर देश में जनजागरण किया। आज की पीढ़ी तो शायद नाम भी नहीं जानती होगी, लेकिन इस देश के इतिहास के नभ पर चमकते कुछेक गिने चुने उज्ज्वल सितारों में से एक विशेष सितारा हैं, राजा राममोहन रॉय... इस देश में अगर किसी ने सबसे पहले स्त्री के अधिकार के लिये आवाज़ उठाई तो ये वे ही थे। इनकी देन थी कि कई जिंदगियों को झूठी बकवास प्रथा के नाम पर जीते जी चिता पर नहीं बैठना पड़ा... हर युग में स्त्री के लिये राजा राममोहन रॉय की जरूरत है, अभी भी स्त्री रोज़ चिता पर बिठाई जाती है...

-निरवणा रॉय